

स्त्री-जीवन की
विडम्बनात्मक
परिणति : बसन्ती
डॉ. प्रियदर्शिनी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा
विश्वविद्यालय, हैदराबाद-तेलंगाना

भीष्म साहनी का नाम जेहन में आते ही मस्तिष्क में दो कृतियों के नाम प्रमुखता से उभरते हैं। पहला उनका बहुचर्चित एवं अनूठा उपन्यास 'तमस' और दूसरा उनकी कालजयी कहानी 'चीफ़ की दावत'। इन दोनों ही रचनाओं ने अपने कथ्य के माध्यम से कई ज्वलन्त प्रश्न समाज के सामने रखे हैं। किन्तु भीष्म साहनी का रचना-संसार इन दो कृतियों से इतर भी बहुत समृद्ध व मजबूत है। 'तमस' उनका केन्द्रीयवर्ती उपन्यास है। भीष्म साहनी के उपन्यासों में एक प्रमुख उपन्यास है 'बसन्ती'। बसन्ती उपन्यास में विभाजन के बाद देश में हो रहे नित नये विभाजनों से जूझने का व जूझने के बाद भी पराजित होते जाने का कारुणिक आख्यान है। 'बसन्ती' उपन्यास अपने समय की तत्कालीन बुराइयों रुढ़ियों की ओर भी पाठकों का ध्यान रेखांकित करता है। पितृसत्ता का वर्चस्व, बेटियों की खरीद-बेच, स्त्री-शोषण, घरेलू हिंसा, लडुकी-लडुके के मध्य असमानता का दृष्टिकोण आदि।

भीष्म साहनी का उपन्यास 'बसन्ती' स्त्री-जीवन की कई बनती-बिगड़ती परिस्थितियों का बड़ा ही जीवन्त अंकन है। उपन्यास की मूल कथा-भूमि दिल्ली है। दिल्ली का रमेश नगर वह मोहल्ला है

जिसे काम-काज की तलाश में अन्य प्रान्तों से आये लोगों ने बसाया है। यह मोहल्ला राजगीर-मिस्त्रियों, मोचियों, नाइयों और ठेले-खोमचेवालों से गुलज़ार है। बसन्ती चौधरी की बेटा है। चौधरी पात्र के माध्यम से भीष्म साहनी ने पितृसत्ता के घृणित चेहरे को बड़ी सच्चाई से उपन्यास में उभारा है, न केवल चौधरी बल्कि दीनू, बरडू, लँगड़ा बुलाकी दर्जी, रमेश नगर की अस्थायी पंचायत के लोग ये जितने भी पुरुष चेहरे उभरते हैं वह सब किसी-न-किसी कायरता, मनोविकार, स्त्री को भोग्या या वस्तु समझने वाली मानसिकता के शिकार हैं। अगर इस उपन्यास में कोई 'नायक' चरित्र है तो वह है 'बसन्ती'। बसन्ती में जीवन जीने के प्रति इतनी उद्दाम लालसा है, इतनी जिज्विषा है कि वह सदैव जीवन के प्रति घोर रूप से आशावान रहती है। बसन्ती किसी भी परिस्थिति में आँसू नहीं बहाती बल्कि "हुआ सो हुआ" जैसे वाक्य बोलकर न केवल अपने-आपको सँभाल लेती है बल्कि पाठकों का मन भी हल्का कर देती है। यूँ तो भीष्म साहनी मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक हैं किन्तु मानवतावाद उनका सिद्धान्त है। वह अपनी हर रचना के माध्यम से मनुष्य से मनुष्य बने रहने की अपील करते हैं। यह मानवता की अनुभूति ही बसन्ती के किरदार में इतनी गहरे तक है कि दीनू के साथ एकान्त में किये गये विवाह को वह सच मान लेती है और दीनू के धोखे को पहचान नहीं पाती। यह उसकी सच्ची मानवता का भोलापन ही है कि दीनू के साथ वह इतनी सपनीली दुनिया में खोयी है कि वह अपने स्त्री-मन को यह सोचने का रती-भर भी अवकाश नहीं देती कि जिसे वह ब्याह और प्रेम मान रही है वह उसकी देह को पाने के लिए दिया गया धोखा है। दीनू के कपट से अनजान बसन्ती कितने भोलेपन से दीनू के संग सच्चा ब्याह रचाती है। —“भगवान के सामने हम दोनों खड़े होंगे हाथ जोड़कर। सिर नवायेंगे। ऐसे ब्याह करेंगे। तू मेरे माथे पर टीका लगाना मैं तेरे माथे पर टीका लगाऊँगी।”

बसन्ती उपन्यास में बसन्ती का पिता निहायत ही काइयाँ व्यक्ति है; वह इस हद तक घृणित व्यक्ति है जो बसन्ती के लापता होने की बात जानते हुए भी बुलाकी दर्जी से बसन्ती का ब्याह कराने के नाम पर पैसे ऐंठता रहता है। इधर बसन्ती को लगता है कि दीनू के साथ भागकर और ब्याह रचाकर उसने अपनी बदनसीबी से हमेशा के लिए पीछा छुड़ा लिया है। जबकि जिसे वह ब्याह मान रही है, और जिसको पति मान रही है, जिस घर को अपना समझ रही है वह घर उसके लिए दैहिक शोषण का अड्डा है। बसन्ती अपने बीते जीवन के तमाम अनुभव दीनू से कहना चाहती है, बोलना-बतियाना चाहती है, किन्तु दीनू सदैव उसकी देह की ताक में ही रहता है। बसन्ती दीनू से इसलिए हँसती-बोलती है कि दीनू उसे सुने उसे तवज्जों दे और दीनू उसे इसलिए सुनता था कि बसन्ती उसको देह दे। कई बार दीनू ने बसन्ती के आनाकानी करने पर कहा भी कि 'तुझे लाया किसलिए हूँ?' दीनू का यह

कहना ही स्त्री की नियत परिपाटी, गुलाम भोग्या-संस्कृति और मर्दवादी सोच का उदाहरण है। पुरुष की दृष्टि में सदैव स्त्री भोग्या ही बनी रहेगी फिर चाहे वह भोग पति करे या प्रेमी या फिर कोई और। प्रेम के नाम पर सदियों से छलती आ रही स्त्रियों को दैहिक उत्पीड़न के अतिरिक्त मिला ही क्या है? बसन्ती एक उन्मुक्त, आशावन, जिन्दादिल लड़की है जब वह प्यार से दीनू को रोकना चाहती तो दीनू उसे उसकी असल हैसियत बताता है—“बसन्ती ने फिर हाथ पकड़ने की कोशिश की, यह तुम्हें क्या हो जाता है? रात-प्रभात जब आते हो चिकने लगते हो। मुझे तो बड़ा गन्दा लगता है न मैं नहाई न धोई, पर जब दीनू नहीं माना तो बसन्ती उसे रोकने लगी, इस पर दीनू तमककर बोला - एक झापड़ दूँगा; तुझे लाया किसलिए हूँ? बसन्ती के हाथ ठिठक गये, ‘बस’ इसी काम के लिए लाया है? दीनू- और नहीं तो क्या?’²

जिससे सुरक्षा और प्रेम की आशा पाकर बसन्ती अपने माँ-बाप को चकमा देकर भागी। देवताओं को साक्षी मानकर ब्याह रचाया उसी कथित जीवनसाथी के स्वर में इतनी क्रूर कामोत्तेजना बसन्ती के भोले स्त्री-मन को भीतर तक छील देती है।

पूरे उपन्यास में बसन्ती के किरदार के कई रंग भरे पड़े हैं, कहीं वह भोली है तो कहीं निर्भीक, कहीं बातूनी तो कहीं संशयग्रस्त, कहीं अल्हड़ और अलहदा तो कहीं निरी होशियार, कभी-कभी पाठक के लिए यह तय कर पाना मुश्किल हो जाता है कि वह मूर्ख है या बड़े दिलवाली? बसन्ती अपनी सौतन रूक्मी के साथ भी गार्जियन और सहेली-सा बर्ताव करती है। दीनू और रूक्मी को घर बिठाकर खिलती है और आप सारा दिन बाहर खटती है, कमाती है। उसे इस बात की भी चिन्ता है कि रूक्मी फैंसी हो जाय, बोडिस पहने, रिबन लगायेंगे और इस बात की भी चिन्ता है कि सौतन को बच्चा हो जाये। बसन्ती ने दीनू को इतने हृदय से स्वीकार किया है कि वह दीनू से जुड़ी हर चीज को स्वतः अपना समझ लेती है। श्यामा बीबी के लाख दुनियादारी की बातें समझाने के बाद भी बसन्ती एक विश्वास भरी बेफिक्री से कहती है कि - “घर घाट क्या होता है बीबी जी? जहाँ बैठ जाओ, वहीं तो घर हो जाता है, घर-घाट क्यों नहीं है बीबी जी? घर भी है, मेरा मर्द भी है, अब बच्चा भी होगा।”³

बसन्ती की आँखों में बसा यह खोखला विश्वास उपन्यास में बसन्ती की स्थिति को और भी दयनीय और निरीह बना देता है। बसन्ती के इस विश्वास को किस प्रकार दीनू छिन्न-भिन्न करता है एक बानगी देखिये— “बसन्ती जिस भविष्य की कल्पना करने लगी थी उसमें दीनू का स्थान उसने ठीक ढंग से आँका नहीं था। वह भूल गयी थी कि दीनू दो बीबियों का मालिक है और घर में उसी की चलेगी। बसन्ती

समझे बैठी थी कि चूँकि उसकी गोद में बेटा है, या इसलिए कि वह काम करती है और कमा सकती है, घर में उसकी चलेगी, वह भूल गयी थी कि इस घर का धुरा दीनू था वह नहीं थी। दीनू बाहर बैठे-बैठे हुक्म चलाता जो उसकी आदत थी और रात को कभी रूकमी तो कभी बसन्ती का शरीर चिंचोड़ता रहता था, लगता था उसने यही एक धन्धा अपना रखा है।'¹⁴

भीष्म साहनी इस उदाहरण के माध्यम से पितृसत्ता पर बड़ा ही गहरा प्रहार करते हैं। भले ही स्त्री पुरुष के पीछे अपना सर्वस्व लुटा दे पर स्त्री के चाम और दाम पर हर हाल में पुरुष ही राज करेगा। प्रेम और अधिकार के नाम पर स्त्री का यह शोषण बदस्तूर जारी रहेगा। पिता के अधिकार से चौधरी न जाने कितनी बार बसन्ती को बेचता है तो वहीं पति के नाम पर घर पर निकम्मा बैठा दीनू बसन्ती की कमाई पर मालिक बनता है। बसन्ती उपन्यास को पढ़ते हुए अनायास ही प्रेमचन्द की सीलिया (गोदान), मंजुल भगत की 'अनारो' (अनारों), उषा प्रियंवदा की सुषमा'' (पचपन खम्भे लाल दीवारें) और ऐसे ही न जाने कितने स्त्री पात्र जेहन में उभरने लगते हैं और इन सभी पात्रों की परिस्थितियाँ चाहे जो रही हो नियति एक-सी दिखायी देने लगती है। हर कहीं छल, शोषण, उत्पीड़न, घात, विश्वासघात और ठगी है। हाँ इनके रूप, परिस्थितियाँ भिन्न अवश्य हो सकती हैं। कहीं मानसिक शोषण से ग्रस्त स्त्री पात्र दिखायी देते हैं तो कहीं शारीरिक व आर्थिक रूप से होम होते नारी-जीवन के रूप। लेकिन इन सभी पात्रों का जो निकष है हासिल है वह एक ही है अनन्त काल तक शोषण के इन रूपों को भोगते जाने का अभिशाप्त शापग्रस्त जीवन। भीष्म साहनी की इस नायिका "बसन्ती में जहाँ स्वतन्त्र जीवन जीने की लालसा भीतर तक है वहीं भरा-पूरा जीवन जीने की दुर्निवार आकांक्षा भी। उसे मैले-कुचैले दिशाहीन जिन्दगी को जीते देख बड़ी कोफ्त होती थी। बसन्ती में जीवन है और जीवन की अभिव्यक्ति के जो रास्ते उसने देखे हैं उसमें से जो प्रबल था वह पहली राह खुलते ही अधीरता वश उसी पर चल पड़ी। ठहरकर विचार करने की स्थितियाँ भी नहीं थीं क्योंकि अगर ठहर जाती तो खुद को बूढ़े बुलाकी के घर पाती।'¹⁵ भीष्म साहनी अद्भुत तरीके से बसन्ती के भीतर पनप रहे मनोभावों, संवेदनाओं को स्वर देते हैं पर साथ-ही-साथ वह बसन्ती की तमाम कोशिशों की अन्तिम परिणति उदासी और निराशा में करते हैं। बसन्ती जिस समाज में और जिस समय में अपने लिए स्वतन्त्र जीवन के स्वप्न देखती है उस समाज की जटिल संरचना व स्त्री के प्रति बाध्य जीवन व आचार-संहिताओं से वह अभी परिचित नहीं है। जिस समाज में स्त्री का जीवन पिता, पति, पुत्र के वृत्त के भीतर ही निहित हो उस समाज में प्रेम करने व अपनी इच्छा से जीवन जीने का दुःसाहस बसन्ती करती है। बसन्ती जिस दीनू को हृदय से अपना पति स्वीकार कर चुकी है उसी दीनू के लिए बसन्ती 'मुफ्त में मिली छोकरी'

और 'सम्भोग की प्रयोगशाला' से बढ़कर कुछ भी नहीं है। दीनू का यह एक वाक्य कि 'तुझे लाया किस लिए हूँ' पूरे उपन्यास में एक 'चीत्कार' की तरह निरन्तर प्रतिध्वनित होता रहता है। स्त्री को होस्टल के बन्द कमरे में बन्दिनी बनाकर रखना उसे भोगते रहने की घटना; भारतवर्ष की हजारों साल पुरानी 'देवी शक्ति रूपेण' वाली परम्परा को वास्तविकता के धरातल पर लाकर धड़ाम से पटक देती है। बसन्ती को पहले उसका बाप चौधरी बेचता है फिर उसका कथित पति 'दीनू' 300 रुपये में बरडू को बेच देता है।

'बरडू' और 'बुलाकी' के बार-बार तगादा करने के बाद भी, दीनू से धोखा मिलने के बाद भी बसन्ती पूरे मनोवेग से अपने सतीत्व की रक्षा करती है। जीवन अपने अनुसार जीने की इच्छा और जद्दोज़हद बसन्ती के जीवन को कई हिस्सों में बाँट देती है। बसन्ती भीतर से जितनी ईमानदार और सच्ची है बसन्ती के द्वारा 'कथित' रूप से उठाये गये गलत कदमों के कारण बसन्ती को समाज की भर्त्सना भी झेलनी पड़ती है उसे भगोड़ी, चोर, बदचलन होने का आरोप भी सहना पड़ता है। स्त्री-जीवन की यही विडम्बना है कि उसके जीवन में वह हर कदम समाज की दृष्टि से बुरा और गलत होता है जिसे स्त्री अपने हित में उठाती है। अन्त में दीनू अपनी 'ब्याहता' पत्नी रूक्मी और बेटे को लेकर चला जाता है। बसन्ती अपने पुत्र पप्पू के साथ अकेली रह जाती है। बसन्ती के अस्तित्व पर ही एक प्रश्न चिह्न लग जाता है कि वह दीनू की कौन थी? पत्नी, रखैल या महज एक एय्याशी का सामान? जहाँ दीनू न सिर्फ बसन्ती को छोड़ता है बल्कि अपने पुत्र 'पप्पू' की भी कोई जिम्मेदारी नहीं लेता। ऐसे में असली 'भगोड़ा' कौन है यह प्रश्न भी बार-बार उठ खड़ा होता है।

“बसन्ती में विद्रोह की सम्भावना असीम हैं किन्तु जीवन में विद्रोह काफी नहीं होता है। हम परिस्थितियों को एक सीमा तक ही प्रभावित कर सकते हैं। आर्थिक, बौद्धिक संसाधनों के अभाव में प्रभाव क्षेत्र और कम हो जाता है। इसलिए बसन्ती का साधनहीन विद्रोह उसे किसी लक्ष्य तक नहीं लेकर जाता। भीष्म साहनी पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था की घुटन और दमन को, जहाँ स्त्री को न खुलकर हँसने की स्वतन्त्रता है न रोने की, को बड़े कलात्मक ढंग से सामने लाते हैं। उसे हर अनुभूति को दबाकर मूक बने रहना है पर अपने 'स्व' को होम करके उसे पोसना स्त्री को है। बसन्ती उपन्यास में जगह-जगह परम्परा की लीक पर चलने के लिए बस्ती वासी कहते हैं कि 'यह पराचीन से चली आयी है।'”⁶

परम्परा के ऐसे अन्धानुकरण का मखौल भीष्म साहनी अपने उपन्यासों में बार-बार उड़ाते हैं फिर धीरे से किसी विकट समस्या के विकराल हो जाने की घटना के मूल कारण में किसी पुरानी मान्यता और परम्पराओं की जड़ता को बताते हैं। निरन्तर

वैचारिक गति और परिवर्तन की कामना व प्रयासों से ही समाज का विकास सम्भव है अन्यथा यह देश, समाज अपनी थोथी परम्पराओं और मान्यताओं, दोहरी नीतियों, दोहरे आचरण के कारण बसन्ती जैसी कद्दावर और सम्भावनाशील औरतों को खोता रहेगा। मनुष्य में मानवता की अपील भीष्म साहनी के हर उपन्यास में दिखायी देती है। भीष्म साहनी के पात्र रोते, बिलखते, छटपटाते पात्र नहीं हैं, मजबूत, दृढ़ और कर्म प्रधान पात्र हैं यह संघर्षशील हैं जीतने में विश्वास करते हैं पर समाज की विडम्बनाएँ इन्हें मात दे देती हैं। भीष्म साहनी उस समाज की कल्पना करते हैं जिस समाज में ईमानदारी, सच्चाई, चरित्र और संघर्ष जैसे मूल्यों की विजय हो। कृष्णा सोबती भीष्म साहनी के सम्बन्ध में लिखती हैं— “जीने के स्तर पर भीष्म के पास एक सुथरा, मजबूत चौखटा है जिसने भीष्म के समूचे लेखन और जीवनदृष्टि को प्रभावित किया है। उनकी अपनी राजनैतिक आस्थाएँ हैं, ‘इंटलेक्चुअल कमिटमेंट है।’”⁷ और यही इंटलेक्चुअल कमिटमेंट भीष्म साहनी की हर रचना में मजबूती से न केवल उभरता ही है बल्कि लम्बे समय तक बना भी रहता है।

सन्दर्भ

1. बसन्ती (उपन्यास): भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन-2012, पृ. 67
2. बसन्ती (उपन्यास): भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन-2012, पृ. 83
3. बसन्ती (उपन्यास): भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन-2012, पृ. 103
4. बसन्ती (उपन्यास): भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन-2012, पृ. 151
5. ‘नया पथ : भीष्म साहनी विशेषांक’ अप्रैल-सितम्बर संयुक्तांक 2015, पृ. 142 ‘उड़ान की तैयारी’ लेख से।
6. नया पथ : भीष्म साहनी विशेषांक - अप्रैल-सितम्बर संयुक्तांक 2015, पृ. 145, 148 ‘उड़ान की तैयारी’ लेख से।
7. नया पथ : भीष्म साहनी विशेषांक - अप्रैल-सितम्बर संयुक्तांक 2015, पृ. 18